उत्तराखंड की भोटिया जनजाति का उद्योग एवं व्यवसाय : अतीत से लेकर वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. दीपक कुमार
बी.एस.एम.पी.जी कॉलेज, रुड़की

भोटिया जनजाति उत्तराखंड के चमोली, उत्तराखंड, पिथौरागढ़, बागेश्वर आदि जनपदों में सदियों से निवास करती रही है। राहुल सांकृत्यायन ने भी सीमान्त क्षेत्र के निवासी भोटिया होने के कारण इस क्षेत्र को 'भोट प्रदेश'[1] कहा।

भोटिया शब्द की उत्पति ''भोट'' अथवा भूट् से हुई है। उत्तराखंड के तिब्बत (चीन) तथा नेपाल सीमा से जुड़े क्षेत्र को भोट या भूट् क्षेत्र कहा जाता है। भोटिया जनजाति पूरे हिमालय क्षेत्र में निवास करती है। भूटान में भूटानी, सिक्किम में भोटिया, हिमाचल में किन्नौर, भौटा आदि नामों से भोटिया जनजाति की पहचान होती है। अंग्रेज एवं यूरोपीय विद्वानों ने भी गढ़वाल एवं कुमाऊँ में रहने वाली जनजातियों की बोली, भाषा, रहन–सहन व सामाजिक, सांस्कृतिक इतिहास के सम्बन्ध में अनेक खोजपूर्ण लेख प्रकाशित किये। जिसमें ई.टी.ऐटंकिसन ने हिमालयन गजेटियर भाग 1, 2, 3, में, शेरिंग सी.ए.–वैस्टर्न तिब्बत एवं ब्रिट्रिश वाण्डरलैण्ड, बाल्टन–गजेटियर ऑफ कुमाऊँ एण्ड गढ़वाल, ओकले–होली हिमालयाज आदि उल्लेखनीय हैं। इन लेखकों ने भी उत्तराखंड के गढ़वाल और कुमाऊँ के सीमान्त क्षेत्रों में निवास करने वाली जनजाति के क्षेत्र को 'भोट' नाम से उल्लेख किया। हिमालय के मध्य स्थित सीमान्त क्षेत्र नीति व माणा घाटी में निवास करने वाली भोटिया जनजाति को क्रमशः तोल्छा व मारछा से जाना जाता है। तिब्बत वाले नीति–माणा घाटी के तोल्छा–गारछाओं को नीरी रंडपा व ''डूनी रंडपा'' तथा उत्तरकाशी वालों को सोसा रंडपा कहकर संबोधित करते थे। रंडपा को तिब्बती भाषा में रंड़–घाटी, 'पा' का तात्पर्य रहना, बसना अर्थात नीती–माणा घाटी में बसने वालों को क्रमशः नीरी रंडपा व डूनी रंडपा तथा जाड़ गंगा घाटी में बसने वालों को 'सोसा रंडपा कहते थे।

विद्वानों व इतिहासकारों ने तोल्छा शब्द को स्थानीय भाषा में (तिल्या छौर के निवासी) निचली घाटी में बसने वाली जाति को कहा है। मारछा (मल्या छौर के निवासी) ऊपरी क्षेत्र में रहने वाली जाति को कहा है। एक अन्य शोध के अनुसार मारछा (मार–घी, छा–नमक) घी व नमक की चाय पीने वालों से तथा तोल्छा (तोर–तेल, छा–नमक) अर्थात् तेल व नमक को मिलाकर बनी ज्या (चाय) पीने वालों से है। उत्तरकाशी में निवास करने वाली भोटिया जनजाति को स्थानीय लोग 'जाड़' कहकर सम्बोधित करते हैं। यह जाति 'जाड़ गंगा' के उद्गम स्थल के समीप जादुंग, नेलंग, बागोरी व डुण्डा आदि गांव में निवास करती है। इसलिए इन्हें स्थानीय बोली में 'जाड़, (जाड़ भोटिया) नाम से सम्बोधन किया जाता है। सीमान्त जनपद पिथौरागढ़ की धरचूला तहसील में दारमा, व्यास व चौंदास घाटियों में निवास करने वाली भोटिया जनजाति को 'शौका' नाम से सम्बोधित किया जाता है। शौका भोटिया जनजाति व्यास, चौंदास व दारगा घाटी में क्रमशः व्याड़सी, चौदाड़सी व दारमी आदि नामों से भी जानी जाती है।

यूरोपीय विद्वानों में एटकिनसन, वाल्टन, ट्रेल व क्रूक्स ने भी 'शौका' शब्द के लिए भोटिया नाम प्रयुक्त किया। यह जातिगत नाम चीन–तिब्बत सीमा से जुड़े उपहिमालयी क्षेत्रों में निवास करने वाली जातियों तथा उसकी विभिन्न शारीरिक विशेषताओं के आधार पर दी गयी है। भोटिया जनजाति की शारीरिक विशेषताओं में तिब्बत के साथ पुराने व्यापारिक सम्बन्धों के आधार पर उनके साथ रक्त मिश्रण होने से आनुवांशिक लक्षणों में मंगोलियन विशेषताएं स्पष्ट होती हैं। जिससे भोटिया जनजाति में शारीरिक बनावट, बोली–भाषा, रहन–सहन, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन शैली में मंगोलियन (तिब्बती) विशेषताएं आज भी दृष्टिगोचर होती हैं।

डी.एन. मजूमदार[2] ने भी भोटान्तिकों को भारतीय मूल का बतलाया है क्योंकि भोटियों के प्राचीन समय से ही तिब्बत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध थे। जिससे धीरे–धीरे इनके वैवाहिक सम्बन्ध भी हो जाने के कारण भोटियों में रक्त मिश्रण होने से तिब्बतियों के आनुवांशिक लक्षण विद्यमान हो गये। आज भी भोटिया जनजाति में तिब्बत मूल (मंगोलियन) मुखमुद्रा, छोटी आंखें, गोल व गेंहुआ चेहरा, सामान्य कद आदि विशेषताऐं परिलक्षित होती हैं। अतः भोटिया जनजाति सदियों से हिमालय के मध्य विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाली भारतीय मूल की ही जनजाति है।

वर्ष 1962 से पूर्व भोटियों का तिब्बत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध सदियों से चला आ रहा था। विषम भौगोलिक परिस्थितियों के होने से जनजाति घुमन्तु एवं व्यापारिक गतिविधियों से जुड़कर अपनी आजीविका को चलाती रही है। हिमालय के मध्य विभिन्न दर्रों (गिरी द्वारों) के समीप बसे होने के कारण तिब्बत काफी निकट पड़ता था। ये अपनी भेड़, बकरियों, घोड़ों को लेकर ग्रीष्मकाल में ऊँचे बुग्यालों (चारागाहों) में चले जाते थे और शीतकाल आरम्भ होते ही निचली गर्म घाटियों में स्थित अपने गांवों में वापस आ जाते थे। भारत चीन आक्रमण से पूर्व नीति–माणा, दारमा, व्यास, चौंदास के भोटान्तिक ग्रीष्मकाल के आरम्भ में बर्फ के पिघल जाने के बाद इन गिरिद्वारों से होकर अपनी भेड़ों–बकरियों व खच्चरों में भारत से चीनी, चाय, तम्बाकू, सूती तागा व अन्य आवश्यक वस्तुओं को तिब्बत व्यापार के लिए ले जाते थे। इनमें वस्तु विनिमय व्यापार प्रणाली चलती थी।[3] जिसमें भारत से ले जायी गयी वस्तुओं व सामान के बदले वहां से सुहागा, हींग, फरण (फाण) चोरू, लादा, चंवर व अन्य वस्तुओं को यहां लाते थे। उत्तराखंड से तिब्बत जाने वाले मार्ग अति दुर्गम व कष्टप्रद होते थे। भोटान्तिक व्यापारी बड़ी हिम्मत व साहस से ऊंटा धूरा, किंगरी–बिंगरी, लिपूलेख व नीति–माणा जेलुखगा दर्रो से होकर तिब्बत की मण्डियों में प्रवेश करते थे। तिब्बत से ये व्यापारी बौद्ध धर्म से सम्बन्धित कलाकृतियों, घंटी, चित्रपट, अस्थिआभूषण, पुस्तकपट्टिका, शोभा, धातु डिब्बा, कपालका, दुन्दभी, मणिचक्र आदि लेकर आते थे और शीतकाल में तिब्बत मार्ग में बर्फ पड़ने से पूर्व (भारत) उत्तराखंड वापस आकर वहां से लायी गयी वस्तुओं को गोपेश्वर, चमोली, पौड़ी, कोटद्वार आदि स्थानों पर लाकर बेचते थे।[4] जिससे इनकी अर्थव्यवस्था संचालित होती थी। भारत (उत्तराखंड) तिब्बत व्यापार के समय भोटान्तिक व तिब्बत व्यापारियों के मध्य अनेक व्यापारिक परम्पराएं एवं प्रथाएं जो कि आपसी मित्रता एवं विश्वास के रूप में जीवित रखी जाती थी जिसमें:–

गमग्या पत्र

यह व्यापारिक मित्रता व विश्वास पर कायम रहने के लिए भोटिया एवं तिब्बत व्यापारियों के मध्य लिखा जाने वाला पत्र था। इसमें व्यापारिक शर्तें होती थी जो कि व्यापार की विश्वसनीयता को पूर्ण ईमानदारी से संचालन के लिए स्थायी तौर पर मान्य होती थी।[5] "गमग्या" (शपथपत्र) पर दोनों पक्षों की मुहर लगायी जाती थी। दोनों पक्षों के पास अलग–अलग चिन्ह होते थे। जिसे पत्थर की टुकड़ियों पर चिन्हित करके एक–दूसरे के पास रख दिया जाता था। पुनः अगले वर्ष भी इन चिन्हित पत्थरों को दिखाकर व्यापार आरम्भ किया जाता था। यदि किसी मित्र के द्वारा यह चिन्हित पत्थर खो जाता था तो व्यापारिक शर्तानुसार उसी पत्थर के टुकड़े के बराबर सोना हर्जाने के रूप में देना होता था।

सिंगच्याद सिंग

सिंगच्याद में (सिंग–लकड़ी, च्याद–टुकड़ा) लकड़ी का टुकड़ा आपस में बांटकर व्यापार शर्तें तय की जाती थी।[6] शिक्षा के अभाव के कारण उस समय भोटिया व तिब्बती व्यापारी एक लकड़ी को दो हिस्सों में तोड़कर आपस में एक दूसरे को सौंप देते थे। इसे व्यापारिक संधि शर्त मानते हुए अगले वर्ष व्यापार कार्य को पुनः संचालित करने के लिए लकड़ी के हिस्से के सही प्रकार से मिल जाने पर करते थे। व्यापारिक संधि शर्तों के अनुरूप यदि लकड़ी सही प्रकार से नहीं जुड़ती है तो व्यापार समाप्त माना जाता था।

छाठल व बालठल

"छाठल" नमक पर निर्मित कर तथा "बालठल" ऊन पर कर देना पड़ता था।[7] पू–लोग्याल (पू–ऊन, लोग्याल–फाँचा) कर तिब्बत सरकार जुंड–पुनपानी (इलाका–हाकिम) को देना पड़ता था। पशुओं को रखने के लिए ठांगढेल, भेड़ों को रखने के लिए 'याठेल' पशुओं को चुगाने का कर 'लाठेल' आदि तिब्बती अधिकारी को देने होते थे। 'दशकरा' से लाठेल आदि व्यापारिक कर भोटिया व्यापारियों को बिक्री कर के रूप में वहन करना होता था।

छपरंगमठ व थोलिंग मठ में स्थित व्यापारिक मण्डियों में आने पर एक सफेद वस्त्र का थान, चन्दन व रूपया भोटिया व्यापारियों को देना होता था। छपरंग व थोलिंग मठ आदि मुख्य मण्डियां थी।[8]

भोटिया जनजाति के लोग ऊँचे हिमालयी क्षेत्रों के चारागाह व बुग्यालों के अति निकट बसे होने के कारण इनका आर्थिक जीवन का मुख्य आधार पशुपालन (भेड़–बकरी पालन) व ऊन उद्योग रहा है। भारत चीन युद्ध से पूर्व भोटिया व्यापारियों का तिब्बत से व्यापारिक सम्बन्ध सदियों से चलता रहा। ये व्यापारी हिमालय के पर्वतीय मार्गों (दर्रों) से होकर ग्रीष्म ऋतु में अपनी भेड़–बकरियों सहित तिब्बत की मण्डियों में पहुंचते थे। भेड़–बकरियों को ऊन प्राप्त करने के साथ–साथ भारवाहक के रूप में भी उपयोग किया करते थे। हिमालय के पर्वतीय मार्गों से तिब्बत पहुंचने के लिए कुमाऊँ की जोहार घाटी से ऊँटाधूरा किंगरी–बिंगरी एवं लिपुलेख मार्ग प्रमुख थे। टिहरी के निलंग मार्ग से छपराड़, माणा से भोलिंग, नीति से दापा, ऊंटाधूरा से न्यूधूरा से ज्ञानिम, लिपूलेख और नेपाल सीमा से तिंकर, तकलाकोट से दरचैन से तिब्बत पहुंचा जाता था।[9] भोटान्तिक वस्तु विनियम व्यापार में यहां से चाय–चीनी, तम्बाकू, सूती धागा, रंग, उवा, जौ, फाफर आदि वस्तुओं को अपनी भेड़–बकरियों में लादकर तिब्बत की ऊँटाधूरा, लिपूलेख, दारमा आदि मण्डियों तक पहुंचते थे। वहां से हींग, फरण, लादा, चोरू व अन्य जड़ी–बूटियां लेकर उत्तराखंड के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर बेचते थे। तिब्बत से नमक को भेड़–बकरियों में लादकर, टनकपुर, हल्द्वानी, कोटद्वार, रामनगर, पौड़ी आदि क्षेत्राों में पहुंचकर "माल का लून" कहकर जौ, मंडुवा व मोटे अनाज के बदले देते थे। वस्तु विनियम प्रणाली के आधार पर तिब्बत से जौ, उवा, मंडुवा अनाज की मांग अत्यधिक होने से भोटिया व्यापारी यहां से एकत्रित करके तिब्बत पहुंचाते थे। तिब्बत से पुनः इस अनाज के बदले अन्य वस्तुएं लाकर यहां पर बेचते थे। इसके अतिरिक्त भोटिया व्यापारी पशम ऊन उद्योग का व्यापार भी करते थे। शीत प्रदेशों में रहने वाले याक, घोड़ों, भेड़–बकरियों के शरीर के लम्बे कोमल बालों से पशम ऊन तैयार किया जाता था। ग्रीष्म ऋतु के शुरू होते ही भेड़–बकरियों के शरीर से ऊन (बाल) काटी जाती थी। भोटिया व्यापारी तिब्बत से पशम ऊन लाकर उत्तराखंड में बेचते थे। जिससे उन्हें अच्छी आय प्राप्त होती थीं तिब्बत व्यापार के समय तिब्बत से हुनकारा भेड़े व बकरियां जौहार के भोटिया व्यापारी खरीदकर उन्हें मांस हेतु लैन्सडौन, रानीखेत आदि छावनियों में बेचते थे। चारागाहों में भेड़–बकरियों की अधिक संख्या होने से उनकी देखरेख के लिए हुन्निकुकुर (भोटिया कुकुर) रखते थे। ये कुत्ते (कुकुर) बड़े फुर्तीले एवं ताकतवर होते हैं। आज भी जब भोटिया अपनी भेड़–बकरियों को लेकर निचली गरम घाटियों में शीतकाल में चुगाने आते हैं तो उनके साथ भोटिया कुत्ते (कुकुर) भेड़ बकरियों की रखवाली के लिए जंगलों एवं चारागाहों में देखे जा सकते हैं। तिब्बत आक्रमण से पशमीना ऊन का आयात बन्द होने से ऊन उद्योग संकट में पड़ गया। तब भोटिया व्यापारियों ने अपनी भेड़–बकरियों की टोलियां तैयार की और पुनः ऊन उद्योग को विकसित उरके इसे गृह उद्योग के रूप में अपनाया। आज भोटिया महिलाएं अपने घरों में हथकरघे से ऊन की कूटाई, फटाई व सफाई में व्यस्त रहती हैं। पूरे दिन भर ऊन की कताई करती रहती हैं। ऊन से घर के सदस्यो के लिए गरम कोट, पंखी, शाल, थुलमा, कमरबन्ध आदि बुनती रहती हैं। इनके द्वारा प्राकृतिक रंगो से सजाकर तैयार 'कालीन' बहुत ही आकर्षक लगती है। ये रंग पेड़ों, पत्तियों एंव जड़ों से रस निकालकर बनाये जाते हैं। ऊन को इन रंगों से रंगकर रंग–बिरंगे ऊनी वस्त्र तैयार करते हैं। ऊन से निर्मित थुलमा, गलीचे, ऊनी, पंखियों को उचित दामों पर बेचकर मुनाफा कमाते

हैं। ऊन की कताई के लिए पहले तकली का प्रयोग किया जाता था। लेकिन अब तकली से ऊन कातना प्रायः विलुप्त हो चुका है। ऊन की सफाई करते समय कूड़ा करकट कुमर आदि को निकालकर उसे गुनगुने गरम पानी में एक घंटे तक भिगोकर रख दिया जाता है। उसे लकड़ी के बल्ले से कूटकर एवं ठंडे पानी से धोकर धूप में सुखाने के लिए रख दिया जाता है। तत्पश्चात उसे चरखे से कातकर धागा तैयार किया जाता है।

ऊन कातने के लिए सामान्य चरखे का प्रयोग सन् 1967 में तथा रांच का प्रयोग 1975 में भोटिया जनजाति के द्वारा आरम्भ किया गया। लकड़ी से निर्मित ये उपकरण आज भोटियों की आजीविका के प्रमुख साधन हैं।[10] भोटिया परिवारों के पास 36 इंज राँच 'छोटी राँच' व 72 इंच राँच 'बड़ी राँच' के नाम से जानी जाती हैं। पंखी व शाल को बड़ी राँच में बुना जाता है। जबकि लवा, मफलर, चुटका छोटी राँच में बुनी जाती है। छोटी राँच को जमीन में सेट करके पाँवों द्वारा संचालित किया जाता है। इस राँच को 'खड़डराँच' कहते हैं। इसके अलावा खड़ी राँच, पड़ी राँच, बेलन राँच आदि द्वारा भी ऊन की बुनाई की जाती है। आज अस्सी प्रतिशत भोटिया व्यक्ति ऊनी कारोबार से जुड़े हुए हैं। जिसमें कुछ परिवारों के पास अपनी ही भेड़ों की ऊन होने से कताई–बुनाई की जा रही है। दूसरे वे हैं जो अन्य परिवार से ऊन खरीदकर ऊन कारोबार में संलग्न हैं। आज ऊन उद्योग को बढ़ावा देने के लिए उत्तराखंड सरकार ने मुनस्यारी, धारचूला, माणा, हर्षिल, भटवाड़ी, गोपेश्वर, उत्तरकाशी आदि स्थानों में 'प्रशिक्षण केन्द्र' खोले हैं। जहां पर नवीनतम तकनीक से ऊन उद्योग को संचालित करने की जानकारियां दी जाती हैं। भोटिया व्यक्तियों द्वारा निर्मित पंखियां 200–500 रूपये, शॉल 100–600 रूपये, कालीन 1500–3000 रूपये तक की लगात में बेचने से उन्हें उचित मुनाफा मिल रहा है। वर्तमान में ऊन उद्योग के कारोबार को प्रगति प्रदान करने के उद्देश्य से हस्तशिल्पियों को जिला उद्योग केन्द्र, खादी ग्रामोद्योग केन्द्र, सरकारी व गैर सरकारी संगठनों द्वारा आर्थिक रूप से भी सहायता प्रदान की जा रही है। जिससे कि उत्तराखंड में ऊन उद्योग उचित ढंग से विकसित हो सके। इसी उद्देश्य से उत्तराखंड में 'जनजाति विकास निगम' की स्थापना चमोली, भीमताल, उत्तरकाशी, डुण्डा आदि भोटिया जनजाति बाहुल्य क्षेत्रों में किया गया है ताकि उनके ऊन व्यवसाय को आगे बढ़ाया जा सके, और यह उद्योग इस जनजाति के विकास का आर्थिक आधार बन सके।

संदर्भः–

सांकृत्यायन राहुल–गढ़वाल, पृ० 65
मजूमदार डी०एन०–रेसेज एंड कल्चर ऑफ इण्डिया, पृ० 48
चौहान आलम सिंह–रडप्पा (तोलछा–मारछा परिदृश्य) पृ० 34
राहुल–पुरातत्व निबंधावली, पृ० 335
चौहान आलम सिंह–रडंप्पा (तोलछा–मारछा परिदृश्य), पृ० 49
चौहान आलम सिंह–रडंपा (तोलछा–मारछा परिदृश्य), पृ० 50
चौहान आलम सिंह–रडंप्पा (तोलछा–मारछा परिदृश्य), पृ० 50
डबराल शिवप्रसाद–उत्तराखंड के भोटांतिक, पृ० 43
पांगती एस०एस0–मध्य हिमालय की भोटिया जनजाति, पृ० 50
मैखुरी हरीश–भोटिया जनजाति का आर्थिक सर्वेक्षण, पृ० 135